श्री भागवत दर्शन

भागवती कथा

खण्ड ८८

[उपनिषद् अर्थ]

व्यासशास्त्रोपवनतः सुमनांसि विचिन्वता ।
प्रणीतं प्रभुदत्तेन श्रीभागवतदर्शनम् ॥

●

लेखक
श्री प्रभुदत्तजी ब्रह्मचारी

●

प्रकाशक
संकीर्तन भवन, प्रतिष्ठानपुर
(झूसी) प्रयाग

● संशोधित मूल्य २-० रुपया

प्रथम संस्करण १००० | अक्टूबर १९७१ कार्तिक सं० २०२८ | मूल्य : १.६५

मुद्रक—वंशीधर शर्मा, भागवत प्रेस, ८५२ मुट्ठीगंज, इलाहाबाद

विषय-सूची

संस्मरण (७)

[स्वातन्त्र प्रेम]

सर्वं परवश दुःखं सर्वमात्मवशं सुखम् ।*

छप्पय

परवशता में मिले मिठाई तनिक न भावै ।
प्राप्त होहि स्वातन्त्र अलोनी रोटी खावै ॥
कनक पींजरा सुघर मिले मेवा भोजन हित ।
तऊ न तोता मुदित रखै स्वच्छन्द गगन चित ॥
परवश में दुख ही सतत, सुख स्वतंत्रतामहँ मिलत ।
पशु पक्षी परतंत्रता, तजि स्वतन्त्र ह्वै सुख लहत ॥

एक बार जनकनन्दिनी भगवती वैदेही अपनी सखी सहेलियों के सहित अपने क्रीडा कानन में विचरण कर रही थीं। वहाँ उन्होंने एक वृक्ष पर एक शुक दम्पती को बैठे देखा। शुकी संस्कृत के श्लोकों का विशुद्ध वाणी में गान कर रही थी। उसका स्वर मधुर था, कहने का ढग मधुर था। उच्चारण शुद्ध था। उसके कथन का भाव था, कि अयोध्यानरेश महाराज दशरथ के ज्येष्ठ पुत्र श्रीरामचन्द्रजी होंगे। वे ससार मे सबसे अधिक सुन्दर होंगे, वे समस्त सद्गुणों की खानि होगे। वे अनुपम, साहसी, तेजस्वी, यशस्वी तथा तपस्वियों जेसे स्वभाव वाले होंगे। शूरवीरता मे

* परवशता म ही समस्त दुख हैं, अपने वश मे रहना इसमे सब सुख ही सुख हैं।

उनके सदृश संसार में कोई दूसरा शूरवीर नहीं होगा। वे विनयी, शीलवान्, सदाचारी, मधुरभाषी, सर्वप्रिय, मातृपितृ भक्त, उदार, धैर्यवान्, साहसी, मृदुल, परोपकारी तथा सर्वगुणसम्पन्न होंगे। वे अपने लघुभ्राता लक्ष्मण के सहित महामुनि विश्वामित्र के साथ मिथिलापुरी में पधारेंगे, शिव के धनुष का खंडन करके जनक दुलारी सीताजी के साथ विवाह करेंगे। सीता ऐसे सर्वगुण-सम्पन्न पति को पाकर परम प्रमुदित होंगी। दोनों की संसार में अनुपम जोड़ी होगी। कविगण उनके यश का गान करते-करते थकेंगे नहीं।

जो कन्या अभी कुमारी है, जिसके मन में वयस्क होने पर एक अनुपम वर पाने की प्रबल इच्छा है, किन्तु अभी तक उसका किसी से सम्बन्ध नहीं हुआ है। सहसा उसे कोई सुखद सम्वाद सुना दे, उसके भावी पति का पता बता दे, उसके देव दुर्लभ गुणों का बखान कर दे, तो उसे कितनी प्रसन्नता होगी? इस सम्वाद से सीताजी की भी प्रसन्नता का ठिकाना नहीं रहा। उनके रोम-रोम खिल उठे। अब वे इस शुभ सम्वाद को सुनाने वाली को अपने वश में रखने के लिये लालायित हो उठीं। उन्होंने अपनी सखियों से सम्मति की। किसी भी प्रकार इस शुकी को पकड़ना चाहिये। शुकी पेड़ पर से उड़कर नीचे एक छोटी लता की डाल पर बैठकर चहकने लगी। पीछे से चुपके-चुपके एक सखी ने आकर उसके ऊपर वस्त्र डाल दिया, उसे पकड़ लिया और पकड़ कर जानकीजी को उसे दे दिया। उसका पति अपनी पत्नी को पकड़ा देखकर दुखी हुआ, अश्रु बहाने लगा।

सीताजी ने शुकी से पूछा—"तुमने यह गायन कहाँ से सीखा ?"

शुकी ने बताया—"हम भगवान् वाल्मीक के आश्रम के वृक्षों

पर निवास करने वाले पक्षी हैं। वाल्मीकि मुनि ने एक रामायण महाकाव्य की रचना की है। उनके शिष्य उस काव्य का गायन करते हैं। उनके मुख से सुनते सुनते हमें भी वह काव्य कंठस्थ हो गया है।"

सीताजी ने कहा—"राम केसे हैं ? उनके गुण क्या-क्या हैं ? उनका सोन्दर्य कैसा है ? इसे मुझे तुम पुनः सुनाओ। मेरी अभी उसे सुनने से तृप्ति नहीं हुई है ?"

शुकी ने पुनः सुनाया। सीताजी ने उससे पुनः सुनाने का आग्रह किया। इस प्रकार कई बार सुनाने पर भी सीताजी की तृप्ति नहीं हुई, तब शुकी ने पूछा—"राजकुमारी! तुम कौन हो ?"

सीताजी ने कहा—"महाराज मिथिलेश विदेह की राजकुमारी वह सीता मैं ही हूँ। मेरे प्राणनाथ राघवेन्द्र कब आवेंगे ?"

शुकी ने कहा—"राजकुमारी! आज हमारा बड़ा सौभाग्य है, जिन जनकनन्दिनी के अनुपम सौन्दर्य की बातें हम काव्यों में सुनते रहे थे, उनके आज साक्षात् दर्शन हो गये। मैंने आपकी आज्ञा का पालन कर दिया। कई बार रामचरित सुना दिया। अब आप मुझे छोड़ दीजिये। मुझे देरी हो रही है, मेरे पति मेरी प्रतीक्षा कर रहे हैं।"

जानकीजी ने कहा—"शुकी! तुमने मुझे अत्यन्त ही सुखद सम्वाद सुनाया है, तुम्हारी वाणी परम मधुर है, अब मैं तुम्हें छोड़ूँगी नहीं। जब रघुकुल भूषण श्री राघवेन्द्र के साथ मेरा विवाह हो जायगा, वे आकर मेरा पाणिग्रहण कर लेंगे, तब मैं तुम्हें छोड़ सकती हूँ। मैं तुमसे नित्य यह मधुर कथा सुना करूँगी।"

शुकी ने कहा—"देखो, राजकुमारी! मैं गर्भिणी हूँ, मैंने और मेरे पति ने एक वृक्ष पर बड़ा सुन्दर घोंसला बनाया है। उसमें मैं

बच्चा दूँगी, उसी में मैं रहूँगी। बच्चों के लिये दूर-दूर से चुगा लाकर उनके मुख में दिया करूँगी, उनका पालन-पोषण करूँगी। मुझे बहुत दुखी मत करो, मेरे पति मेरी प्रतीक्षा में बैठे रो रहे हैं, मुझे छोड़ दो।"

सीताजी ने कहा—"देखो, शुकी! तुम घास-फूँस के घोंसले के लिये इतनी उत्सुक हो। मैं तुम्हारे लिये सुवर्ण का सुन्दर पींजरा बनवाऊँगी। उसमें हीरा मोतियों की झालर लगवाऊँगी। तुम्हें बैठने को रेशमी गद्दे बनवाऊँगी। खाने को सुवर्ण के पात्रों में नित्य नूतन मेवा, मिश्री, दाख, खजूर, छुआरे, बादाम तथा भाँति-भाँति की मिठाइयाँ दूँगी। मेरे यहाँ ही तुम बच्चों का प्रसव करना, मैं तुम्हारा सब प्रबन्ध करूँगी। तुम्हें प्राणों से भी अधिक प्यार के साथ रखूँगी।"

शुकी ने कहा—"राजकुमारी! तुम अभी नितान्त बच्ची हो, तुम पति के सुख से और स्वातन्त्र की भावना से सर्वथा अनभिज्ञ हो। जो सुख मुझे स्वतन्त्र रहकर-स्वच्छन्द गगन में-अपने पति के साथ उस घास-फूँस के घोंसले में मिलेगा उसका सहस्रांश भी सुख मुझे तुम्हारे सोने के पींजड़े में, सुवर्ण के वर्तनों में, रेशमी गद्दों में, मेवा, मिठाई तथा भाँति-भाँति के फलों में नहीं मिल सकता। हम स्वतंत्रता प्रेमी पक्षी हैं। हमें स्वतन्त्रता अत्यंत प्रिय है। परवशता में दुःख ही दुःख है, स्वतन्त्रता में सुख ही सुख है फिर चाहे एक समय बासी रूखे सूखे टुकड़े ही क्यों न मिलें। सो, तुम मेरी स्वतन्त्रता का अपहरण मत करो। मुझे स्वच्छंद आकाश में छोड़ दो। मैं तुम्हारी मंगल कामना करूँगी। भगवान तुम्हारा भला करें। तुम मुझे परवश मत बनाओ। परतन्त्रता के पींजड़े में बन्द मत करो।"

सीताजी ने कहा—"शुकी! तुम चाहे एक बार कहो, चाहे

लाख बार कहो। जब तक श्री रामचन्द्रजी के साथ मेरा विवाह न होगा, तब तक मैं तुम्हें नहीं छोड़ूंगी, नहीं छोड़ूँगी, कदापि नहीं छोड़ूँगी।"

शुकी ने जब देखा, सीताजी किसी भी भाँति मानने वाली नहीं हैं, तब उसने शाप दिया—"जैसे तुमने मुझे गर्भावस्था में अपने पति से पृथक् कर दिया है, उसी तरह तुम भी गर्भावस्था में अपने पति से वियुक्त हो जाओगी।" ऐसा कहकर उसने अपने प्राणों का परित्याग कर दिया।

शुकी ने स्वतन्त्रता के ऊपर सुवर्ण का घर, सुवर्ण के पात्र, रेशमी गद्दे, भाँति-भाँति के स्वादिष्ट व्यंजनों का तथा प्राणों का भी परित्याग कर दिया, किन्तु परतन्त्र रहकर जीवन व्यतीत करना स्वीकार नहीं किया। अत्याचारी के अधीन होकर रहना, आततायियों से सुख सुविधा पाकर अपनी स्वतन्त्रता को बेच देना, उनके दास बनकर रहने से तो मर जाना ही अच्छा है।

मुसलमान आततायियों, धर्मोन्मादियों, दस्युधर्मियों ने हिन्दु जाति पर जैसे जघन्य अत्याचार किये हैं, उनका यहाँ उल्लेख करना व्यर्थ है। इतिहास के पन्ने-पन्ने में उनके अमानुषीय अत्याचारों की गाथायें भरी पड़ी हैं। हिन्दु धर्म को सदा-सदा के लिये नष्ट करने और अपने मजहब को स्थापित करने को उनसे जो भी क्रूरसे क्रूरतम अत्याचार-पापाचार-व्यभिचार बन सके वे उन्होंने सब किये। हिन्दु जाति उनसे ऊब गयी थी। लगभग एक सहस्र वर्षों तक वह उनसे लोहा लेती रही। उस संघर्ष में हिन्दु जाति का कितना ह्रास हुआ, यह कहने की बात नहीं, अनुभव करने की वस्तु है। जैसे अमावस्या की घोर रात्रि के अन्त में ऊषा काल की लालिमा दृष्टिगोचर होती है, अरुणोदय का प्रकाश दिखायी देता है, वैसे ही उन घोर अत्याचारों के अन्त में-राजस्थान में महाराणा

प्रताप, पंजाब में महाराणा रणजीत सिंह, सिक्खों के धर्मरक्षक दशों गुरु, महाराष्ट्र में हिन्दुपदपादशाही के संस्थापक छत्रपति शिवाजी तथा बहुत से सन्त महात्मा उदय हुए। उन्होंने इस घोर अन्धकार में प्रकाश की किरण दिखायी। आसेतु हिमालय पुनः हिन्दु धर्म की स्थापना हुई। पुनः छत्रपति शिवाजी, महाराज रणजीत सिंह, महाराणा प्रताप आदि शासकों को गो, ब्राह्मण प्रतिपालक की गौरवमयी उपाधि से विभूषित किया जाने लगा। किन्तु हिन्दु जाति के दुर्दिनों का अभी अन्त नहीं होने वाला था। ज्यों-ज्यों मुसलिम साम्राज्य का ह्रास होने लगा, त्यों-त्यों एक तीसरी शक्ति शनैः-शनैः पुनः उभरने लगी। यह था फिरंगियों का मायाजाल। पश्चिम की गोरी जातियों में सर्वप्रथम फ्रांसीसियों ने इस भारत भूमि के कुछ खण्डों पर अपना अधिकार जमाया था। फ्रांस के होने से हम लोग उन्हें फिरंगी कहते थे। फिरंगियों की स्त्रियाँ गोरे रंग की होती थीं, उनमें भारतीय महिलाओं की भाँति पातिव्रत का परम कठोर बन्धन नहीं होता था, वे भारतीय स्त्रियों की अपेक्षा अधिक स्वच्छन्द होती थीं। भारतीयों के साथ संसर्ग होने से भारतीयों में एक रोग होने लगा। उसका नाम भी फिरंग रोग रखा गया। चरक सुश्रुत में फिरंग रोग का कहीं उल्लेख नहीं। तत्कालीन आयुर्वेद के विद्वान् माधव ने अपने माधव निधान वैद्यक ग्रन्थ में सर्वप्रथम फिरंग रोग का वर्णन किया है।

फ्रांसीसी तो चले गये, उसी समय अँगरेज व्यापारी इस देश में आये। वे फ्रांसीसियों की भाँति ही गोरे थे, अतः इन्हें भी हम लोग फिरंगी ही कहते थे। जब पहिले ही पहिल नल लगाये गये और भारतीयों ने नल का विरोध किया तो हम लोग बालकपन में गाया करते थे—

फिरंगी नल मति लगवावै ।
नल को पानी बहुत बुरो मेरी तबियत घबड़ावै ॥ फिरंगी० ॥

किसी को क्या पता कि आगे चलकर ये ही फिरंगी व्यापारी इस देश के कर्ता, धर्ता, हर्ता, विधाता बनकर लगभग डेढ़ शताब्दी तक हमारे ऊपर निरंकुश शासन करेंगे । हमारी सद्यः प्राप्त स्वतन्त्रता का पुनः अपहरण कर लेंगे । उस समय ब्रिटिश साम्राज्य उन्नति की चरम सीमा पर पहुँचा था । समस्त देशों में उसकी धाक थी छोटे बड़े लगभग सवा सौ देश ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत थे । प्रसिद्धि ऐसी थी, कि ब्रिटिश साम्राज्य में कभी सूर्य अस्त ही नहीं होता था ।

मुसलिम अत्याचारों से त्रस्त भारतीयों ने पहिले तो इन गोरों को अपना त्राता समझकर शरण दी किन्तु जब दोनों ही समझ गये कि ये दो बिल्लियों के बटवारे में बन्दर का काम कर रहे हैं, दोनों की रोटियों को चट करने वाले हैं, तो दोनों ने मिलकर इन्हें भगाने की योजना बनायी । इन गोरों के विरुद्ध पहिली क्रान्ति का सूत्रपात हुआ । वही सन् १८५७ का प्रथम स्वातन्त्र संग्राम था । जो सर्वथा असफल हुआ और गदर के नाम से प्रख्यात किया गया । उसके पश्चात् हमारा देश जो अब तक गोरों की इस्ट इंडिया कम्पनी के अधीन था अब ब्रिटिश सामाज्य के अधीन हो गया । हम अँगरेजों के दास कहलाये जाने लगे । उन दिनों साम्राज्ञी विक्टोरिया ब्रिटिश सिंहासन पर सिंहासनासीन थीं । उन्होंने घोषणा की—किसी भी प्रकार किसी के धार्मिक कार्यों में कैसा भी हस्तक्षेप न किया जायगा, सभी को अपने अपने धार्मिक कार्य करने की पूर्ण स्वतन्त्रता होगी ।

हिन्दुओं का सर्वस्व तो धर्म ही था, उसके लिये उन धार्मिक स्वतन्त्रता ही सबसे बड़ी वस्तु थी । अब तक हि—

के ही लिये संघर्ष कर रहे थे। धन को उन्होंने कभी प्राधान्यता नहीं दी। किन्तु शनैः शनैः हिन्दुओं को प्रतीत होने लगा—कि यह धार्मिक स्वतन्त्रता केवल दिखावटी है, भीतर ही भीतर हिन्दु समाज को ईसाई बनाने की योजना चल रही है। ईसाई धर्म प्रचारकों को न्यायालयों में, रेलों में, सेनाओं में विशेष सुविधायें दी जा रही हैं। राज्य का धन किसी भी तिकड़म से ईसाइयत के प्रचार में व्यय किया जा रहा है। शासन की समस्त बागडोर विदेशियों के ही अधीन है। समस्त बड़े-बड़े अधिकारी विदेशी ही बनाये जा रहे हैं। भारतीयों को कोई उच्चपद दिया ही नहीं जाता, तो कुछ अँगरेजी पढ़े लिखे लोगों ने हमें गृहशासन का (होमरूल) अधिकार मिले, इसके लिये गृहशासन समिति (होमरूल लीग) बनायी। किन्तु इसका प्रचार सर्वसाधारण जनता में नहीं हुआ। कुछ आधुनिक शिक्षा के शिक्षित कलहोपजीवी (वकील) आदि में ही रहा।

महात्मा गांधी ने भारतवासियों की नस पहिचानी। उन्होंने अपने आंदोलन में धार्मिकता का पुट दे दिया इसलिये यह आन्दोलन सार्वजानिक बन सका, जन-जन में इसका प्रचार हो गया। यह देश सदा से धर्मप्रधान, साधु सन्त महात्माओं, त्यागी, विरागी आचार्यों द्वारा संचालित होता आया है। अतः गान्धीजी ने --

(१) सर्वप्रथम तो महात्माओं जैसा वेष धारण किया केवल एक लँगोटीधारी बन गये।

(२) दूसरे उन्होंने नित्य धार्मिक प्रार्थना आरम्भ की। जिसमें गीता, महाभारत, पुराण तथा उपनिषद् आदि के चुने-चुने श्लोक होते थे।

(३) तीसरे नित्य राम धुनि आरम्भ की जिसमें वे ही पुरानी

ध्वनियों "रघुपति राघव राजाराम, पतित पावन सीताराम।"

(४) विदेशी वेष का बहिष्कार।

(५) विदेशी वस्त्रों का बहिष्कार।

(६) विदेशी भाषा का बहिष्कार।

(७) गौरक्षा को प्राथमिकता।

(८) हिन्दी को राष्ट्र भाषा मानना।

(९) अहिंसा, सत्य, अस्तेय आदि व्रतों पर बल देना।

(१०) रामायण गीता का नित्य पाठ और प्रचार।

ये कार्य ऐसे थे जिन्हें धार्मिक जनता चाहती थी और हमारे प्राचीन सन्त महात्मा सदा से करते आये हैं। किन्तु यह कहने मे कोई सकोच नहीं कि महात्मा गान्धी राजनतिक व्यक्ति अधिक थे। धार्मिक बहुत कम। वे जो धार्मिक कृत्य करते थे, वे केवल जनता को अनुकूल रखने को करते थे, ये कार्य राजनैतिक कार्यों के लिये एक प्रकार की ढाल थे। यदि वे विशुद्ध धार्मिक होते, तो आज देश की दूसरी ही दशा होती, कोई धार्मिक व्यक्ति प्रधान मन्त्री होता और जो देश सदा से धर्म प्रधान रहा है, जिसने सम्पूर्ण ससार को धर्म की शिक्षा दी है उसकी आज ऐसी दुर्दशा न होती। वह अपने को बनावटी धर्मनिरपेक्ष (हिन्दुत्व द्रोही) कहने में गौरव का अनुभव न करता। अस्तु, गान्धीजी ने राजनेतिक कार्य की सिद्धि के लिये धार्मिक कृत्यों का प्रयोग अस्त्र के रूप में किया। इसका एक उदाहरण यहाँ दिया जाता है 'भारत में अँगरेजी राज्य' के लेखक श्री सुन्दरलालजी प्रयाग से हिन्दी उर्दू लिपि में एक मासिक पत्र निकालते थे। उसमे उन्होंने गान्धीजी के सम्बन्ध में लिखा था तब साबरमती आश्रम पहिले ही पहिल स्थापित हुआ था। तब वह सत्याग्रह आश्रम के नाम से पुकारा जाता था। अहमदाबाद के गुजराती सेठों की

सहायता से चलता था। उसकी एक छपी विज्ञप्ति में आश्रमवासियों के नियम छपे थे। आश्रमवासियों के पालनीय नियमों में एक नियम यह भी छपा था, कि आश्रमवासी आश्रम से बाहर जाने पर किसी के हाथ का बनाया भोजन न करे। यदि करना ही हो तो केवल दूध फल ले सकते हैं।

हमारे सुन्दरलालजी जिन्हें हम हँसी में मौलवी सुन्दरलाल कहा करते हैं, जो मुसलमानों के सबसे बड़े पक्षपाती हैं, इस दकियानूसी पोंगापन्थी कहे जाने वाले नियम को कैसे स्वीकार कर सकते थे? उन्होने पूछा—"बापू! यह आपने कैसा नियम बना दिया? (अर्थात् यह तो चौका-चूल्हे छूआ-छूत का समर्थक नियम है।)"

तब उन्होंने कहा—"यह नियम तुम्हारे लिये नहीं है। यह तो परिस्थितिवश बनाना पड़ा।"

पहिले आश्रम में उच्चवर्ण वाले ही भोजन बनाते थे। फिर ज्यों-ज्यो उनका प्रभाव बढ़ता गया त्यों-त्यों इन नियमों में ढिलाई होने लगी और फिर तो हरिजन भी बनाने लगे। पहिले वे तीर्थ-यात्रा, व्रत, पूजन, यज्ञोपवीत संस्कार सब मानते थे। काशी विद्यापीठ के बाबू भगवान दासजी कर्मणाजाति के पक्षपाती थे। जब गान्धीजी से पूछा गया, तो उन्होंने कहा—"जाति जन्मना और कर्मणा दोनों ही हैं।" वे पीछे केवल कर्मणा ही मानने लगे।

मेरे कहने का अभिप्राय इतना ही है कि वे राजनीति प्रधान व्यक्ति थे। इसमें उनका भी क्या दोष? भगवान् ने जिस कार्य के लिये उन्हें भेजा था, वही कार्य उन्होंने किया। उस समय भगवान् ऐसे ही व्यक्ति की आवश्यकता समझते होंगे।

मैं जब-जब भी बाहर जाता, और किसी किले को टूटा-फूटा उजाड़ पड़ा देखता, तो पता लगता अँगरेजों ने इसे ढहा दिया है।

यहाँ का राजा भाग गया, या मार डाला गया। अँगरेजों से पहिले देश में सर्वत्र छोटे-छोटे स्वतन्त्र राज्य होते थे। अँगरेजों को हाथरस, मुरसान, भरतपुर आदि छोटे-छोटे राज्यों से वर्षों युद्ध करना पड़ा था। उनकी नीति ही यही थी, कि कोई भी झूठा सच्चा कारण दिखाकर रियासतों को अँगरेजी राज्य में मिला लेना। इस प्रकार सहस्रों रियासतों को पूर्णरूप से या अंशरूप से अँगरेजी राज्य में मिला लिया था। बहुतों को पंगु बना दिया, बहुतों से औपनिवेषिक सन्धि कर ली। फिर भी ६००।७०० राज्य बचे ही रह गये थे। उन सब राज्यों को स्वराज्य के पश्चात् हमारे पटेलजी ने भारतीय संघ में मिला लिया। भारत का एक भाग पाकिस्तान बन गया। भारत की तीन छोटी-छोटी रियासतें नैपाल, भूटान, सिक्किम नाम मात्र को शेष रह गयी हैं।

जब इन टूटे फूटे किलों को मैं देखता; तो मेरे मन में बार-बार यही बात उठती, सात समुद्र से पार आकर मुट्ठी भर विदेशियों ने कैसे हमारे इस महान विस्तृत देश पर अपना अधिकार जमा लिया। मेरे ही मन में ऐसे भाव उठते हों सो बात नहीं। प्रत्येक स्वातन्त्र्यप्रेमी युवक के मन में ये भाव उठते थे। इसके लिये प्रत्यक्ष कुछ करने कराने की तो उस समय सामर्थ्य ही नहीं थी। बहुत से गुप्त संगठन बन गये थे। जो अपने-अपने ढंग से स्वतंत्रता प्राप्ति का प्रयत्न करते थे। किन्तु उस समय अँगरेजों का इतना अधिक आतंक था, कि कोई खुलकर सम्मुख आने का साहस ही नहीं करता। तभी गांधी जी असहयोग अस्त्र लेकर अँगरेजी सरकार के सम्मुख आये। उन्होंने देश भर के युवकों में इस स्वराज्य यज्ञ की बलि वेदी पर बलिदान होने के लिये आह्वान किया। उस यज्ञ के एक अत्यन्त ही नगण्य होता के रूप में मैं भी उस यज्ञ में सम्मिलित हुआ।

उस समय स्वतन्त्रता की लहर देश के कोने-कोने में ऐसी जाग्रत हो गयी थी कि बिना देखे कोई उसकी कल्पना ही नहीं कर सकता था। महात्मा गान्धी के प्रयत्न से भारतीय राष्ट्रीय सभा (श्रा० इं० कांग्रेस) ने अँगरेजी सरकार से असहयोग करने का प्रस्ताव स्वीकृत कराया। पहिले तो कुछ मूर्धन्य नेता–जैसे लाला लाजपत राय–महामना मालवीय आदि इससे पूर्णरीत्या सहमत नहीं थे, किन्तु पीछे गांधी की आँधी ऐसी चली कि नरम दल के कुछ इने गिने नेताओं को छोड़कर सभी उसमें सम्मिलित हो गये। उस समय असहयोग आंदोलन के ये मुख्य-मुख्य कार्य थे।

(१) अहिंसा, सत्य पर आरूढ़ रहना। कोई अपने साथ हिंसक व्यवहार भी करे, तो उस पर प्रहार न करना। उसके सब अत्याचारों को सह लेना। किसी से कड़वे वचन भी न कहना।

(२)सरकारी न्यायालयों का सर्वथा त्याग। अपने अभियोग सरकारी न्यायालयों में न ले जाना, पंचायतों द्वारा अपने यहाँ ही समस्त अभियोगों को तै कर लेना।

(३) सरकारी विद्यालयों का सर्वथा त्याग। सरकारी विद्यालयों को छोड़कर राष्ट्रीय विद्यालयों में शिक्षा प्राप्त करना। राष्ट्रीय विद्यापीठों की स्थापना करना। भारतीय भाषा को शिक्षा का माध्यम बनाना।

(४) विदेशी वस्त्रों का तथा जितनी संभव हों समस्त विदेशी वस्तुओं का परित्याग। स्वदेशी हाथ की बनी खद्दर ही पहिनना। खद्दर का उत्पादन बढ़ाना। प्रत्येक व्यक्ति को अनिवार्य रूप से चर्खा कातना।

(५) पकड़े जाने पर बिना किसी आपत्ति के सहर्ष जेल चले जाना। वहाँ जाकर अपना किसी प्रकार का बचाव न करना।

जो दंड दिया जाय उसे सहन करना। यदि दंड स्वरूप में रुपयों का दंड दिया जाय तो रुपया नहीं देना।

(६) तिलक स्वराज्य कोष के लिये एक करोड़ रुपया एकत्रित करना।

(७) राष्ट्रीय महासभा (श्रा० इ० कांग्रेस) के एक करोड सदस्य बढ़ाना।

(८) सरकारी नौकरी, वकालत तथा और भी सरकार को सहयोग देने वाले समस्त कार्यों को त्याग देना।

इस प्रकार यह असहयोग आन्दोलन की मुख्य-मुख्य बातें थीं। देश की स्वतन्त्रता के नाम पर की हुई गाँधीजी की घोषणा पर अनेकों सरकारी नौकरों ने नोकरियाँ छोड़ दीं, बहुत से वकीलों ने वकालत छोड़ दी। असंख्यों छात्रों ने विद्यालय, महाविद्यालय तथा विश्वविद्यालय छोड़ दिये। उस समय त्याग की कैसी भावना आ गयी थी। बड़े-बड़े धनिक जो सर्वदा सुख से जीवन व्यतीत करते थे, जिनका जीवन ही भोग विलासमय था, वे सर्वस्व त्यागकर खादी पहिनकर, चनों पर निर्वाह करते हुए गाँव-गाँव घूमने लगे।

उन दिनों पंडित मोतीलाल जी नेहरू और पंडित जवाहरलाल जी नेहरू के त्याग की सर्वत्र बड़ी ख्याति थी। पंडित मोतीलाल जी हमारे प्रयाग के ख्यात नामा वकील माने जाते थे। वकालत से उनको कितनी आय थी, इसका यथार्थ अनुमान कोई कर ही नहीं सकता था। उनका आनन्द भवन प्रयाग में दर्शनीय स्थान माना जाता था, दूर-दूर से लोग आनन्द भवन को देखने आया करते थे, उनके विलासमय जीवन की अनन्त कथायें प्रचलित थीं। हम तो यहाँ तक सुनते थे, कि उनके कपड़े फ्रांस की राजधानी पेरिस से धुलकर आते थे। यहाँ के धोबी उनके कपड़े धो ही नहीं सकते थे। किन्तु ये झूठी बातें थीं। पं० जवाहरलाल जी ने उनका ...

किया है। पं० जवाहरलाल जी भी थोड़े ही दिन पूर्व विदेशी वकील (वैरिस्टर) बनकर विदेश से लौटे थे। वे भी प्रयाग के उच्च न्यायालय में वकालत करते थे। बाप बेटों के त्याग की अनेकों गाथायें प्रचलित थीं। लोगों का कहना है बेटा ही बाप को त्याग के पथ पर खींच लाया था। पं० मोतीलाल जी के जवाहरलाल जी इकलौते ही पुत्र थे और वे उन्हें अत्यधिक प्यार करते हैं। संभव है पुत्र स्नेह के वशीभूत होकर ही उनका त्याग की ओर झुकाव हुआ हो। उनके वकालत त्याग के सम्बन्ध की एक किंवदन्ती हमने और भी सुनी थी, उसमें झूठ सच कितना है इसे तो भगवान् ही जानें।

महात्मा गाँधी प्रयाग आये। उन्होंने पं० मोतीलाल जी नेहरू से मिलने का समय माँगा। पंडितजी ने कहा—"मुझे मिलने का समय नहीं है।"

महात्माजी ने कहा—"मुझे अधिक समाय नहीं, केवल दो मिनट चाहिये।"

पंडित जी ने न्यायालय जाते समय मोटर पर चढ़ते समय दो मिनट देना स्वीकार किया। महात्माजी नियत समय पर पहुँच गये और उन्होंने कहा—"मैं आप का अधिक समय न लूँगा। मैं आप से एक अभियोग के सम्बन्ध में सम्मति लेने आया हूँ।"

पंडितजी ने पूछा—"कहिये क्या अभियोग है ?"

महात्माजी ने कहा—"हमारे इतने बड़े देश पर इन विदेशी अँगरेजों ने बलपूर्वक अधिकार जमा लिया है, इनसे अपना अधिकार पुनः कैसे लिया जाय, इसी विषय में आप से सम्मति लेने आया हूँ।" किंवदन्ती को गढ़ने वालों का कहना है-यह बात पंडितजी के हृदय में तीर के समान लग गयी और फिर उन्होंने

न्यायालय जाना स्थगित कर दिया, गान्धीजी से कई घण्टों तक बातें कीं। उसी समय अपनी वकालत छोड़कर वे महात्माजी के साथ हो लिये।

इस किवदन्ती में कितना सत्य है, कितना झूठ, किन्तु इसका सार इतना ही है, कि देश की स्वतंत्रता के आह्वान पर वे विलासी से त्यागी बन गये। पंडितजी से भी बढ़कर उनके पुत्र के त्याग की प्रशंसा अधिक थी, उनका तो रहन-सहन, स्वभाव सभी बदल गया था।

उसी त्याग की आँधी में देश को स्वतंत्र करने–विदेशियों को अपने स्वदेश से भगाने की–भावना से मैं भी इन असहयोगियों की मंडली में सम्मिलित हो गया। किसी अधिकार प्राप्ति की भावना से नहीं। उस समय अधिकार प्राप्ति का तो किसी के सम्मुख प्रश्न ही नहीं था। किसी को भी यह विश्वास नहीं था, कि हमारे जीवन में अँगरेज लोग राज्य छोड़कर चले जायँगे। जैसे आज तो लोग राष्ट्रीय सभा में इसी भावना से सम्मिलित होते हैं कि हमें विधान सभा या लोक सभा की सदस्यता का स्वीकृति पत्र मिल जायगा। सदस्य होते ही मंत्री बनने की भावना व्यक्त करने लगते हैं। उन दिनों ये संभावनायें ही नहीं थीं। उस समय तो सब यही सोचते—"हम कब पकड़े जायँगे, कब जेल जायँगे। कब फाँसी पर लटकाये जायँगे।"

सब लोग त्याग करने को लालायित थे। किसी ने सरकारी नौकरी त्याग दी है, किसी ने वकालत, पढ़ाई, विदेशी माल की बिक्री त्याग दी है, किसी ने बाल बनवाना त्याग दिया है, कोई अन्न त्यागकर फलाहरी बन गये हैं, किसी ने वस्त्र त्याग दिये हैं, लँगोटी लगाकर रहने लगे हैं। बड़े-बड़े घरों के लड़के, बड़े-बड़े

सरकारी नौकर, वकील, बड़े धनी पागलों की भाँति गाँव-गाँव में प्रचार करते घूम रहे हैं। उनमें बहुतों का त्याग अनुकरणीय था।

हमारे जैसे लोगों का त्याग कोई त्याग नहीं। हम देहात के रहने वाले, रूखा-सूखा भोजन करने वाले, क्षेत्र में खाने वाले संस्कृत के विद्यार्थी हमारा कोई त्याग नहीं था। हमारे लिये नित्य १०। ५ कोश चलना, गाँव-गाँव घूमना एक दो दिन भूखों रह जाना साधारण-सी बातें थीं। त्याग तो उनका कहा जावेगा, जो समस्त सुख सुविधाओं को त्यागकर जेलों में सूखी रोटी खाने को तैयार होकर गाँव-गाँव घूम रहे थे।

हमें तो असहयोगी बनने में लाभ ही था। एक तो हम जहाँ भी जाते, जिस गाँव में जिसके द्वार पर जाते वहीं आदर पाते। एक तो संस्कृत के विद्यार्थी, दूसरे नाम से, वेष से साधु। भारतीय समाज में सदा से साधुओं का आदर होता आया है, उस समय तक साधु वेषधारियों से-अब की भाँति-घृणा नहीं हुई थी। लोग वेष का भी आदर करते। अतः सैकड़ों सहस्रों नर-नारी हमारा भाषण सुनने आते। कहीं-कहीं शोभा यात्रा भी निकाली जाती। लोग आदर सत्कार करते, भोजन कराते और प्रशंसा करते। कुछ सरकार से डरने वाले, धनिक व्यापारी वर्ग अवश्य हमसे दूर-दूर रहते, किन्तु हृदय से वे भी आदर करते।

हमारे एक सहाध्यायी थे स्वामी योगानन्दजी यति हम दोनों मिलकर एक गाँव से दूसरे गाँव में जाते। नगर में बहुत से कार्यकर्ता थे, किन्तु वे ऐसे ही थे। कोई शोभायात्रा हो उसमें साथ हो जाना, कोई सभा हो उसमें सम्मिलित हो जाना, कोई नेता आवे तो उसके पीछे लग जाना। सब कुछ छोड़कर चौबीस घंटे इसी काम में लगे रहने वाले हम दो ही थे। स्वामी जी का संसर्ग कुछ धनिक लोगों से भी था, एक तो वे एक पैर से लँगड़े थे, दूसरे सुख

सुविधा के आदी हो गये थे। वे भी बहुत दौड़ धूप नहीं कर सकते थे। बहुत कहने पर साथ चले जाते, किन्तु वे अधिक कार्य नगर में ही करना चाहते थे। मेरे आगे नाथ न पीछे पगहा। मुझे चौबीसों घंटे यही धुनि थी। एक चदरा, एक लँगोटी यही मेरा वेष था। खाने को जो भी मिल जाय, कोई किसी प्रकार का व्यसन नहीं, कोई आवश्यकता नहीं। एक मुसलमान सज्जन ने बाजार में दुकानों के ऊपर तीन कमरे दे रखे थे, उन्हीं में मैं अकेला रहता था, एक में २–४ चरखे भी रख रखे थे। उसका नाम स्वराज्य आश्रम रख दिया था, वहाँ जो आता उसे चरखा चलाना सिखाते। नगर में भोजन के लिये किसी-किसी के यहाँ भटकना पड़ता। गाँवों में तो जिसके यहाँ जाते वही खिला देता। अतः हमें गाँवों में ही घूमना सुविधाजनक होता। कहीं घोड़े से, कहीं ऊँट से, कहीं बैलगाड़ी से और कहीं पैदल ही जाते। किसी गाँव में राष्ट्रीय पाठशाला खुलवाते, कहीं पंचायत की स्थापना करते। इस प्रकार उस जनपद में बड़ी प्रसिद्धि हो गयी।

उन दिनों देश में बेगार प्रथा थी, दरोगा, तहसीलदार, डिपुटी जो भी आते बेगार लेते थे। इसके विरुद्ध आंदोलन हुआ। इसमें बिजनौर के पं० जगदीशदत्तजी सोती ने बड़ा काम किया था, एक दिन वे खुरजा आये, उनके साथ एक दूसरे भी सज्जन थे, वे अपने व्याख्यानों में जनता को बहुत हँसाते थे, अपने को सोतीजी का शिष्य बताते थे। उन दिनों सर्वसाधारण जनता ऐसे ही व्याख्यानों का आदर करती थी, जिसमें सरकार की कड़ी से कड़ी आलोचना हो, और जिस में हँसी विनोद की मात्रा अधिक हो। जनता को जो जितना ही अधिक हँसाता था, वह उतना ही कुशल वक्ता माना जाता था। उन दिनों में एक लट्ठ रखता था और उट पटाँग बकता था, जनता को हँसी विनोद की

सुनाकर हँसाता भी था, अतः वक्ताओं में पाँचवा सवार मैं भी अपने को लगाता था।

हाँ, तो सोतीजी के शिष्य का व्याख्यान जनता को बहुत प्रिय लगा। सबके आग्रह पर हमने उन्हें २-३ दिनों और रोक लिया। नित्य उनका व्याख्यान कराते। अट्टा में साथ ही रहते। सोतीजी अत्यधिक स्नेह करने लगे। मैंने सोतीजी से कहा—"हमारे यहाँ कोई कार्यकर्ता नहीं, आप अपने यहाँ से कोई कार्यकर्ता हमारे यहाँ भेजिये।"

सोतीजी ने कहा—"एक लड़का सेना में से नौकरी छोड़कर आया है, वह उस जनपद से पृथक् कहीं काम करना चाहता है, यदि आवेगा तो मैं उसे आपके यहाँ भेजूँगा।" ऐसा कहकर वे बिजनौर चले गये। ५-६ दिन के पश्चात् गले में झोला डाले एक युवक मेरे पास आया। उसने कहा—"आपने सोतीजी से किसी को भेजने को कहा था, उन्होंने मुझे आपके पास भेजा है, मेरा नाम महावीर त्यागी है।"

त्यागीजी बड़े हँसमुख मिलनसार थे, उन्हें पाकर हमें बड़ी प्रसन्नता हुई। वे तगा ब्राह्मण थे। बुलन्दशहर जिले में अनूपशहर बसी बुगरासी की ओर बहुत से तगाओं के गाँव हैं, वे खेती करते हैं उनमें बहुत से धनी और बड़े-बड़े भूमिधर भी थे। हम दोनों उधर गाँव-गाँव घूमने लगे। त्यागीजी सरकार की बड़ी तीक्ष्ण आलोचना करते। न कहना चाहिये वे भी कह डालते अतः जनता उनके व्याख्यान को बड़ी रुचि से सुनती। मैं जहाँ तक होता मर्यादा में बोलता। उधर एक एम० ए० पास और भी तगा जाति के कार्यकर्ता थे, वे भी अत्यन्त प्रभावशाली भाषण करते। पीछे वे पकड़े गये। त्यागीजी किसी कार्य से पुनः बिजनौर चले गये। मैं फिर अकेला रह गया।

मैं समझता था, मैं जनता को अपने व्याख्यानों में हँसाता हूँ इसलिये लोग मुझे देखकर प्रसन्न होते हैं, मुझे प्रणाम करते हैं। यह मै नही समझता था, कि लोग मुझे एक चरित्रवान् व्यक्ति मानते हैं। दो घटनायें ऐसी घटी जिससे मै फिर बहुत सम्हलकर रहने लगा। पहिली तो बुलन्दशहर में घटी। बुलन्दशहर के बहुत से वकील वकालत छोड़कर राष्ट्रीय कार्य करने लगे थे।

हमारे यहाँ खुरजा में एक उपदेशक आये। अब उनके बारे में विशेष न कहूँगा, वे ऐसे ही सट्ट-पट्ट थे। पैसा बटोरने को उन्होंने कई प्रभावशाली भाषण कंठ कर लिये थे। हम तब तक इन सब तिकड़मों से अपरिचित थे, उन्होंने कहा—आप हमारे साथ बुलन्दशहर चलो। मैं चला गया। वहाँ राष्ट्रीय सभा के कार्यालय मे ठहरे। जो व्याख्यान उन्होंने खुरजे मे दिया था, वही अक्षरशः वहाँ दिया। वे कुछ अश्लील हँसी विनोद कर रहे थे। लोग उसमे रस ले रहे थे। उसी प्रसंग में मैंने भी कोई उसके सम्बन्ध मे विनोद की बात कह दी। उस समय और लोग तो हँसने लगे। एक बड़े वकील जो वकालत छोड़ चुके थे, बड़े गम्भीर होकर बोले—"ब्रह्मचारी जी! हम तो आपको एक आदर्श ब्रह्मचारी मानकर आपका बड़ा आदर करते हैं, आपके मुख से ऐसा शब्द शोभा नहीं देता।" उस समय मैं सन्न हो गया, मुझे बड़ी लज्जा आई। मैंने कहा—"बाबूजी! बड़ी भूल हो गयी। आगे से ऐसी भूल न होगी।" तब से मैं अपनी वाणी पर विशेष संयम रखने की यथाशक्ति चेष्टा करने लगा।

दूसरी घटना खुरजा रेल के संयुक्त स्टेशन पर घटी। महात्मा गांधी अलीगढ़ आये हुए थे। वे शेरवानी वकील की कोठी पर ठहरे हुए थे। बकरी का ही दूध पीते थे। खुरजे से सैकड़ों-सहस्रों मनुष्य बिना टिक्ट उनके दर्शनों को गये। उन दिनों लाखों मुसल-

मानों ने मांस खाना छोड़ दिया था। गौरक्षा के लिये मुसलमान भी हिन्दुओ के साथ प्रचार करने जाते। और गोरक्षा न करने के लिये सरकार की आलोचना करते। हिन्दु मुसलिम एक्य ऐसा फिर कभी दृष्टिगोचर नहीं हुआ। अलीगढ़ जुम्मा मसजिद में सभा होने वाली थी, हम पहिले ही मसजिद में पहुँच गये और सायंकालीन सन्ध्या मसजिद में ही बैठकर की। लाखों हिन्दु मुसलमान उसमें एकत्रित हुए। सभा समाप्त होने पर हम कहाँ रहते, पास में एक पैसा नहीं। भोजन का ठिकाना नही। स्टेशन पर आये और खुरजा की ओर जो भी गाड़ी आई उसी में बिना टिकट बैठकर चल दिये। खुरजा जंकशन पर उतरे। वहाँ एक बूढ़ा-सा आदमी यात्रियों से टिकट ले रहा था। मुझसे भी उसने पूछा—टिकट ?

मेरे पास टिकट कहाँ थी, मैं झूठ बोला—"टिकट मेरे एक साथी पर है।"

उसने कहा—"आप तब तक यहाँ खड़े रहें साथी को आ जाने दीजिये।" मैं खड़ा हो गया। बहुत देर हो गयी। साथी कोई होता तो आता। उस बुड्ढे ने पूछा—"कहाँ है आपका साथी ?"

झूठ को छिपाने को दूसरा झूठ बोला, मैंने कहा—"स्यात् खुरजा नगर जाने वाली गाड़ी में बैठ गया हो।" क्योंकि जंकशन स्टेशन से खुरजा नगर ३।४ मील है।

उसने कहा—"चलिये, उसी में देखा जाय।" मैं उसके साथ चल दिया। एक झूठ को छिपाने के लिये मनुष्य को कितने झूठ बोलने पड़ते हैं। मैंने १०।५ डिब्बों में झूठे ही देखा। कोई साथी होता तो मिलता। मैंने कहा—"यहाँ भी नहीं है।"

तब यह हँस पड़ा और अत्यन्त ही व्यंग के साथ बोला—"आपको लज्जा आनी चाहिये। इतने बड़े नेता, महात्मा होकर झूठ

बोलते हैं। एक तो आप बिना टिकट आये यही अपराध किया, फिर उस अपराध को छिपाने को आपने कई झूठ बोले। मेरी आप पर बडी श्रद्धा थी। मैं आपके व्याख्यानों को नियमित सुनता था। जनता के सम्मुख तो आप ऐसे आदर्श पुरुष बनते हैं और यहाँ ऐसी झूठी बातें बनाते हैं। मैं यहाँ के गिरजाघर मे पादरी हूँ। मेरा लडका यहाँ टिकट क्लेक्टर है। टिकट लेना मेरा काम नहीं है, किन्तु आपको देखकर मैं टिकट लेने खडा हो गया। जाइये, आगे से ध्यान रखिये। अपनी पद प्रतिष्ठा के अनुकूल व्यवहार कीजिये। जनता के सामने जैसा आदर्श रखते हो वैसा आचरण जीवन में भी कीजिये।" यह तो मैंने उसके भाषण का सार कहा, वह न जाने और क्या-क्या उपदेश देता रहा। मैंने इसे भगवान् का वरदान ही माना। दोनों कान पकडे और उसी दिन प्रतिज्ञा की, कि आज से कभी भी बिना टिकट रेल में न चढूँगा।"

अब यह तो नहीं कहता, कभी भूल में, कभी परिस्थितिवश, कभी श्रेणी भेद से भूल चूक हो गयी हो,किन्तु तब से जानबूझकर मैंने बिना टिकट यात्रा नहीं की। उस समय मुझे अनुभव हुआ, लोग मुझसे कितने उच्च चरित्र की आशा रखते हैं और मैं अपनी निर्बलताओं के कारण उनकी इच्छाओं की पूर्ति कर नहीं सकता।

जीवन मे प्रथम बार ही मुझे गाँवों में घूमकर प्रचार का कार्य करना पडा। इससे जीवन में बडे अनुभव हुए। बहुत सी शिक्षायें मिलीं। उन दिनों जमींदारी प्रथा थी। लोग एक से लेकर सहस्रों गाँवो तक के जमींदार होते थे। जमींदार अपने को राजा ही मानते थे। जिसे चाहें अपनी जमींदारी से निकाल दें। प्रजा के सब घर जमींदारों के ही घर माने जाते थे। उनमें से अधिकांश

अत्यन्त विलासी हो गये थे। प्रायः सभी ऋण से दबे रहते। इतने पर भी वे लोग धर्म भीरु होते थे। नित्य ही जमींदारियाँ बिका करती थी। एक दिन खुरजा जंकशन के समीप हम गाँव में गये। एक बहुत बड़ा भारी उजाड़ घर पड़ा था, उसी में ठहरे। वह एक बहुत बड़े जमींदार की गद्दी थी। उनकी कथायें हम बहुत सुना करते थे। वे बहुत गाँवों के स्वामी थे। चार घोड़ों की गाड़ी में निकलते। दो घुड़सवार आगे, दो पीछे चलते। जब वे खुरजे के बाजार में जाते तो सभी दुकानदार खड़े होकर उनका अभिवादन करते। किन्तु वे विलासी इतने हो गये कि सदा सुरा सुन्दरियों में ही निमग्न रहने लगे। शनैः-शनैः सब ग्राम बिक गये। अन्त में यह दशा हो गयी, कि जो दुकानदार खड़े होकर उनका अभिनन्दन करते उनसे एक रुपये का अनाज माँगने जाते, तो वे उन्हें दुदकार देते। पीछे वे सड़क पर बैठकर यात्रियों से एक-एक पैसा की भीख माँगने लगे। उनके सगे नाती से उनकी सब बातें सुनी, उनका उजड़ा बगीचा, समाजगृह, संगीतगृह के स्थान देखे। बड़ा वैराग्य हुआ। "स्त्रियश्चरित्रं पुरुषस्य भाग्यं दैवो न जानाति कुतो मनुष्यः। उनके वे सब गाँव पास के सीकर वाले ठाकुर ने खरीद लिये। सीकर सीकरा दो गाँव थे। सीकरा में हमने एक राष्ट्रीय विद्यालय स्थापित किया था। उसमें भम्मनलालजी को अध्यापक बनाया था। पीछे वे विश्वबन्धु के नाम से विख्यात महात्मा कहलाये। उनका भी देहान्त हो गया। कितने साथी चल बसे कोई गणना नहीं, कोई संख्या नहीं। यह तो सरकने वाला, बदलने वाला संसार है। कोई स्थायी नहीं, एकरस नहीं। सभी परिवर्तनशील है।

अरे, मैं तो भटक गया। हाँ तो हमारे सब साथी पकड़े गये। स्वामी योगानन्दजी यति पकड़े गये, बिजनौर से त्यागीजी

बुलन्दशहर के जिलाधीश की आज्ञा से पकड़कर बुलाये गये, बुलन्दशहर के भी बहुत से आदमी पकड़े गये। किन्तु मैं नहीं पकड़ा गया। उन दिनों जेल जाना बड़े गौरव की बात मानी जाती थी, जो जेल नहीं गया, वह नेता ही नहीं समझा जाता था। हमारे यहाँ के परगना हाकिम एक बड़े आस्तिक ब्रह्मण्य व्यक्ति थे, वे चाहते थे हमारे हाथ से ब्रह्मचारीजी न पकड़े जायँ। जनपद के जिलाधीश तो चाहते थे, किन्तु ये अनेक बातें बताकर टाल जाते, कभी केवल चेतावनी देकर छोड़ देते। यह मेरे लिये असह्य था, यदि पकड़ा न गया तो जनता को क्या मुख दिखाऊँगा। नेतापन कैसे स्थायी रहेगा। मेरे लिये उस अधिकारी की ब्रह्मण्यता शाप के समान हो गयी। अब मैं दिन रात्रि इसी चिन्ता में रहने लगा, कि कैसे पकड़ा जाऊँ। अब मेरा संयम छूट गया। सरकार की कड़ी से कड़ी आलोचना करने लगा। अब मेरा एकमात्र ध्येय किसी प्रकार पकड़ा जाना और अपने नेतृत्व की रक्षा ही रह गया था।

बात बहुत बड़ी है और यह प्रसङ्ग भी बढ़ गया है, अतः मैं कैसे पकड़ा गया। इस बात को अगले संस्मरण में बताऊँगा।

छप्पय

सेवा सबतैं सुघर होइ निष्काम भावतैं।
सेवा में बड़ विघ्न करो यदि स्वार्थ भावतैं॥
सेवा परम महान करैं हरि सबमें जानै।
सेवा प्रभु की करूँ सबनि भगवत्मय मानै॥
सेवा काहू की करो, निश्चय तिहि फल पाउगे।
सेवा प्रभु ही की करो, जगबंधन छुटि जाउगे॥

भावनानुसार फल

[६४]

अहं वृक्षस्य रेरिवा। कीर्तिः पृष्ठं गिरेरिव। ऊर्ध्वपवित्रो वाजिनीव स्वमृतमस्मि। द्रविण ँ सवर्चसम्। सुमेधा अमृतोक्षितः। इति त्रिशङ्कोर्वेदानुवचनम्॥*

(तै० उ० १० अनु०)

छप्पय

जो जब जैसी करै भावना तस फल पावै।
तातैं करि नित ब्रह्म भाव ब्रह्महि ह्वै जावै॥
हौं उच्छेदक जगत वृक्ष को काटि गिराऊँ।
पर्वत शिखर समान कीर्ति मम अमृतहिँ खाऊँ॥
अन्नोत्पादक सूर्य में, जस अमृत तस हौं अमृत।
पावन परम प्रकाश युत, हौं आलय वर घन अमित॥

मनुष्य जैसा सोचता है वैसा ही हो जाता है। हम जिसमें जैसी भावना रखेंगे, वैसा ही हमारा भाव बन जायगा। माता, बहिन, पुत्री, पत्नी सब स्त्री ही हैं, किन्तु भावना के अनुसार

---

* मैं इस जगत् वृक्ष का उच्छेद करने वाला हूँ। मेरी कीर्ति गिरि शिखर के सदृश परमोन्नत है। मैं अत्यन्त पवित्र हूँ। सूर्य जैसे अमृतमय है वैसे मैं भी अमृत ही हूँ। मैं परम प्रकाशमय धन हूँ। मैं शुद्ध बुद्धि वाला हूँ। मैं अमृत से अभिषिक्त हूँ। यह त्रिशङ्कु ऋषि का वेदानुवचन है।

उनमे भेद हो जाता है। एक धनिक का बालक है, वह अपने बलवान् मल्ल पहरेदार की मूँछे पकड़ लेता है, उसे उसका भय नहीं। क्योंकि उसका यह भाव दृढ़ है, कि मैं स्वामिपुत्र हूँ। मनुष्य जब अपने को निर्धन अनुभव करने लगता है, तब अपने को असहाय, निरर्थक, दीन मानकर हताश हो जाता है। जब साहस करके सोचता है मेरे हाथ पैर हैं मैं जो चाहूँ सो कर सकता हूँ, तब वह पुरुषार्थ करता है और अपने अभीष्ट की प्राप्ति कर लेता है।

एक युवक था। उसके माता-पिता मर गये। महाविद्यालय का छात्र था। शुल्क न दे सकने के कारण आचार्य ने उसे विद्यालय से पृथक् कर दिया। भोजन के लिये भी उसके पास कुछ नहीं था। तीन दिन से उसे भोजन नहीं मिला था। भूख के कारण, बेकारी के कारण, सहायक के अभाव मे वह हताश हो गया। अत्यंत दुखी होकर वह एक साधु स्वभाव के परोपकारी ज्ञानी पुरुप के समीप गया। रो-रोकर उसने अपनी पूरी विपत्ति सुनायी। साधु पुरुप बड़े धैर्य के साथ उसकी सब बातो को चुपचाप सुनते रहे। अन्त में उसने कहा—"मैं अत्यन्त ही अभागा हूँ, मेरा कोई सहायक नहीं, मेरे पास धन के नाम पर एक पैसा भी नहीं, मैं किसी काम का नहीं, व्यर्थ हूँ, बेकार हूँ, अब मैं आत्महत्या करना चाहता हूँ।"

साधु पुरुप ने कहा—"मेरे एक मित्र चिकित्सक हैं, वे दूसरों के कटे अंगो को जोडने का काम करते हैं। यदि तुम अपना एक पैर काटकर दे दो, तो वे तुम्हे एक सहस्र रुपये तत्काल दे देंगे। रुपये कहो तो मैं अभी दे दूँ। जाओ अपना पैर कटवा आओ।"

उसने कहा—"पैर कटवाने से तो मैं सर्वथा बेकार हो जाऊँगा

चलूँगा कैसे ? मैं सहस्र रुपये के लोभ से जीवन भर के लिये पंगु बनना नहीं चाहता।"

साधु पुरुष ने कहा—"अच्छा एक हाथ ही कटवा लो।" वह उससे भी सहमत नहीं हुआ। जीभ, आँख, नाक, दाँत सबके लिये प्रस्ताव किया और सभी में उसने अपनी अस्वीकृति ही व्यक्त की।"

तब साधु पुरुष ने कहा—"तुम तो कहते थे, मैं निर्धन हूँ, मेरे पास एक फूटी कौड़ी भी नहीं। तुम तो बहुत बड़े धनी हो। दो हाथ, दो पैर, दो आखें, ३२ दाँत, एक जीभ, एक नाक तुम एक-एक सहस्र में भी देना नहीं चाहते, ये सब तुम्हारा कितना धन है। इन सबसे बढ़कर बुद्धि है। बुद्धि द्वारा इनसे काम लो। निराशा को पास में फटकने भी न दो, तुम महान् धनी हो, अपने को निर्धन कभी न मानो। तुम महान् धनी हो, पुरुपार्थ करो, साहस करो, उत्साह के साथ कार्य में जुट जाओ। पर्वत के सदृश अडिग होकर अपने उद्देश्य की पूर्ति में जुट जाओ। तुम्हारा शोक, मोह, निराशा, दीनता, हीनता, अकर्मण्यता सभी मिट जायगी। तुम शोक, मोह, दीनता से रहित परम सुखी बन जाओगे।" यह कहकर साधु पुरुष ने उसे ५ रुपये दिये और कहा—"पुरुपार्थ करो, निराशा से सदा दूर रहो। कभी हताश मत होओ। जाओ कल्याणमय प्रभु तुम्हारा कल्याण करें।"

ऐसा पुरुपार्थ मन्त्र पाकर उसने पाँच रुपये से अपना व्यवसाय आरम्भ किया और कुछ ही दिनों में वह बहुत बड़ा धनिक, उत्साही, परोपकारी, सुखी, उद्योगपति बन गया।

प्रार्थना कोई हाथ जोड़कर, एकान्त में बैठकर ही नहीं की जाती, वह तो चलते-फिरते, उठते-बैठते भी हो सकती है। हमारे

सतत विचार ही प्रार्थना हैं। तुम निरन्तर जैसा सोचते रहोगे, वैसे ही हो जाओगे। एक बात को बार-बार सोचना ही प्रभु प्रार्थना है। अपने को जैसा सोचेंगे वैसा ही शरीर भी हो जायगा। शरीर तो विचारों के-भावों के-अनुरूप ही चेष्टायें करता है।

एक महात्मा थे। मुझसे बता रहे थे कि एक दिन मुझे तीव्र ज्वर आ रहा था। श्लेष्म था, सरदी थी, सम्पूर्ण शरीर में बड़ी पीड़ा थी। एक व्यक्ति मेरा नाम पूछते-पूछते मेरे दर्शनों को आया। उसने मुझे शैया पर कई कम्बल ओढ़े पड़े देखा, तो बोला—"आप ऐसे क्यों पड़े हैं?"

मैंने कहा—"अरे, भैया! क्या करें, शरीर अत्यन्त रुग्ण है, ज्वर है, श्लेष्म है, प्रत्येक अंग में पीड़ा है, बड़ा कष्ट है।"

उसने गरजकर कहा—"नहीं, ऐसा कभी नहीं हो सकता। आप आनन्दस्वरूप हैं। आपको ज्वर आ नहीं सकता। सरदी लग नहीं सकती। आपको कष्ट कदापि नहीं हो सकता। आप उठकर बैठिये। ज्वर आपके पास कैसे फटक सकता है। उठिये, उठिये।" ऐसा कहकर उसने बलपूर्वक मुझे उठा दिया और गरजकर बोला—"अब आप सुखी हैं, शान्त हैं, नीरोग हैं, प्रसन्न हैं, हँसिये, हँसिये।"

महात्मा कहते थे, मैं उसकी साहस भरी बातें सुनकर हँस पड़ा। तभी मेरा ज्वर, सरदी, श्लेष्म, शरीर की पीड़ा तथा निर्बलता सभी दोष समाप्त हो गये। क्षण भर में ही मैं स्वस्थ हो गया। भर पेट भोजन किया। यह दृढ़ संकल्प का ही प्रतिफल है।

इस विषय में हमें भी अनुभव हैं, उनमें से एक का यहाँ उल्लेख किया जाता है। जब काशीजी में थे, तब एक बार हमने नियम किया—दोपहर में एक बार जौ के आध सेर आटे की रोटी,

आधा सेर दूध इतना ही भोजन चौवीस घंटे में लेना। नमक मिरच, मीठा तथा अन्य कोई भी वस्तु नहीं।

एक दिन पूड़ी खाने की इच्छा हुई। हमने सोचा जगत् भावमय है, क्यों न इन सूखी रोटियों में पूड़ी की भावना करके खायँ। सो हमने पूड़ी की भावना करके भोजन आरम्भ किया। तो ऐसा प्रतीत हुआ मानों हम पूड़ी ही खा रहे हैं। वही गंध, वही स्वाद सब कुछ पूड़ी का ही आनन्द। खाने के पश्चात् सोचा सम्भव है हमें भ्रम हो गया हो, तो पीछे जो उद्गार (डकारें) आईं वह भी पूड़ी की। तब हमने सोचा—वस्तुओं में गुण तथा स्वाद नहीं होते। भावमय ही यह जगत् है। जो जैसा भाव करता है, वह वैसा ही हो जाता है। सब कुछ भाव से–श्रद्धा से–ही होता है, 'यो यच्छ्रद्ध स एव तत्'।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! आपने मुझसे त्रिशंकु मुनि की भावना के सम्बन्ध में प्रश्न किया था। सो जैसे त्रिशंकु मुनि ने भावना–दृढ़ संकल्प–की महिमा बताई है। और अपने मन में जो निरन्तर भावना की जाती है, मानों यही प्रभु की प्रार्थना है। मनुष्य जैसा सोचता है, जो सोचता है वैसा ही वही बन जाता है। ब्रह्म प्राप्ति के अनन्तर त्रिशंकु मुनि ने अपना अनुभव व्यक्त किया है। श्रीमद्भगवत् गीता में साक्षात् श्री भगवान् ने अपने श्री मुख से एक वृक्ष का वर्णन किया है। वह वृक्ष अश्वत्थ का है, ऐसा विलक्षण वृक्ष है कि इसका मूल नीचे न होकर ऊपर है, शाखायें नीचे हैं, कर्मकांड का कथन करने वाले त्रेगुण्य विषय वेद इसके पत्ते हैं, ये शाखायें त्रिगुण रूप जल से बढ़ती हैं, पंचविषय ही इसके कोपल हैं, शाखायें ऊपर भी हैं, नीचे भी हैं, इसकी जड़े कर्मानुसार बाँधने वाली हैं। आदि अन्त से रहित यह वृक्ष है। इसकी जड़ें–मूल–दृढ़ हैं। इस वृक्ष को काट देना चाहिये। दृढ़